सहकारिता के लाभ का उपयोग *

दुव्वुरी सुब्बाराव

संयुक्त राष्ट्र द्वारा घोषित अंतरराष्ट्रीय सहकारिता वर्ष मनाने के लिए 'सहकारिता के लाभ के उपयोग' विषय पर आयोजित दो दिवसीय अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन के उदघाटन के लिए मुझे आमंत्रित करने हेतु आप सबको हार्दिक धन्यवाद। मेरे लिए यह अवसर बहुत ही मूल्यवान है।

2. संपूर्ण विश्व में पूरे वर्ष सहकारिता समारोह मनाया जा रहा है जो 'हमें कारोबार गतिविधियों और सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों को आगे बढ़ाने के लिए सहकारी कारोबार मॉडल की क्षमता को एक वैकल्पिक साधन के रूप में पहचानने' का अवसर प्रदान करता है। मुझे इस बात की भी खुशी है कि इस सम्मेलन की मेजबानी रिज़र्व बैंक का कृषि बैंकिंग महाविद्यालय कर रहा है। जब इसकी स्थापना पहली बार की गई थी, उस समय इस महाविद्यालय का उद्देश्य ग्रामीण और सहकारी क्षेत्र के कार्मिकों की क्षमता का निर्माण करना था। इस सम्मेलन की मेजबानी करने से महाविद्यालय के पास अवसर है कि वह अंतरराष्ट्रीय अनुभवों से सीखकर इस क्षेत्र में अपनी विशेषज्ञता को और बढ़ा ले।

3. आमतौर पर संपूर्ण संसार की राय है कि सहकारी संस्थाएं अपने मूल औचित्य से दूर हो गई हैं और आज इस जटिल और वैश्वीकृत हो रहे संसार में सहकारी संस्थाओं की कोई प्रासंगिक भूमिका नहीं है। यह पूरी तरह से गलत राय है। निश्चित रूप से मेरी राय पूरी तरह इसके विपरीत है। आज से जटिल और वैश्वीकृत हो रहे संसार में सहकारी संस्थाओं की भूमिका अधिक अर्थपूर्ण हो गई है। किन्तु सबसे पहले मैं यह बताने का प्रयास करता हूँ कि सहकारिता का क्या मतलब है?

सहकारिता को परिभाषित करना - कारोबार लक्ष्य हेतु क्षमता का समूहन

4. सहकारी संस्थाओं पर अनेक औपचारिक परिभाषाएं उपलब्ध हैं किन्तु सहकारी संस्थाएं सदस्यों के स्वामित्व वाला कारोबार है। इनका औचित्य समूहन की क्षमता में होता है। सहकारिता उन लोगों की क्षमता को एकत्र करती है जिन्हें स्वयं के कारोबार लक्ष्य को निजी तौर पर प्राप्त करने में कठिनाई होती है। इस प्रकार वे ऐसे विशिष्ट प्रतिष्ठान हैं जो कि सदस्य-स्वामित्व, सदस्य-चालित और सदस्य-नियंत्रित कारोबार हैं।

5. जिस तरह से सहकारी संस्थाएं गठित की जाती हैं, वे एक तरफ मुक्त बाजार संगठन के कारण तीसरा विकल्प होती हैं (जो बाजार में विनिमय के जरिए वस्तुएं और सेवाएं प्रदान करती हैं) एवं दूसरी तरफ राज्य के स्वामित्व वाले संगठन (जो राज्य के नियंत्रण में वस्तुएं और सेवाएं प्रदान करती हैं) होती हैं। सैद्धांतिक पक्षों पर अधिक न जाकर, मैं सुरक्षित रूप से कह सकता हूं कि सहयोग तभी होता है जब सबके हित को ध्यान में रखकर की गई गतिविधि से या तो लागत कम होती है और या फिर भावी सदस्यों का लाभ बढ़ता है। वित्तीय सहकारी संस्थाओं के संबंध में, भविष्यगत सुदृढ़ता और संवृद्धि हेतु अतिशेष राशि के उपयोग हेतु पर्याप्त मार्जिन सुनिश्चित करने के बाद ये सदस्यों की बचत पर प्रतिलाभ को बढ़ाती हैं और उनके ऋणों पर ब्याज कम करती हैं।

आज के परिप्रेक्ष्य में सहकारी संस्थाओं का औचित्य और प्रासंगिकता

6. अब मैं फिर से वर्तमान समय में सहकारिता के औचित्य से संबंधित प्रश्न पर लौटता हूँ। जैसा कि मैंने शुरूआत में जिक्र किया था कि कम-से कम दो कारणों से आज के जटिल और वैश्वीकृत हो रहे संसार में सहकारी संस्थाओं की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

7. पिछले 60 सालों के दौरान हमने संसार के विभिन्न भागों में आर्थिक संवृद्धि के अनेक प्रसंग देखे हैं। इनसे प्राप्त अनुभवों से सबसे बड़ी सीख यह मिलती है कि संवृद्धि समावेशी होने पर ही अधिक समय तक बनी रह सकती है। असमानता को बढ़ाने वाली संवृद्धि न सिर्फ दीर्घकालिक नहीं होती, बल्कि उसकी वैधता भी मजबूत नहीं होती जिससे अंत में वह आर्थिक और सामाजिक स्थिरता के लिए नुकसानदायक हो जाती है। इस बात के ढ़ेर सारे स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध हैं जिनमें से एक पिछले वर्ष हुआ 'आकूपाई वॉल स्ट्रीट' आंदोलन है जो कि अनुचित संवृद्धि से संबंधित असंतोष

* कृषि बैंकिंग महाविद्यालय, पुणे में 16 नवंबर 2012 को अंतरराष्ट्रीय सहकारिता वर्ष मनाने के एक भाग के रूप में सहकारिता के लाभ का उपयोग' विषय पर आयोजित अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में भारतीय रिज़र्व बैंक के गवर्नर डॉ दुव्वुरी सुब्बाराव द्वारा दिया गया उद्घाटक भाषण।

का नवीनतम प्रमाण है। इसीलिए विश्वभर के देशों की सरकारें इस बात पर अत्यधिक बल दे रही हैं कि आर्थिक संवृद्धि के प्रयासों के साथ-साथ यह भी सुनिश्चित करना है कि उनकी संवृद्धि प्रक्रिया समावेशी हो। समावेशी संवृद्धि को समझने के अनेक रास्ते हैं: जिस तरह से मैं समझता हूँ कि उसके अनुसार समावेशी संवृद्धि एक ऐसी प्रक्रिया है जहां संवृद्धि में गरीब भी योगदान देते हैं और गरीबों को इस संवृद्धि से लाभ मिलता है। इस नजरिए से, सहकारी संस्था प्रणाली समावेशी संवृद्धि के लिए एक प्रभावी उपाय है और गरीबों द्वारा योगदान करने का एक शक्तिशाली मंच है।

8. एक दूसरा और इसी के समान एक और मत है जो सहकारिता के महत्त्व को स्पष्ट करता है। हाल के वित्तीय संकट हमें महत्त्वपूर्ण सीख मिली है। कई विकसित अर्थव्यवस्थाओं में 'कैसिनो बैंकिंग' से सामान्य मोहभंग होने के चलते वास्तविक अर्थव्यवस्था में अधिक वित्तीयकरण का खतरा स्पष्ट हो गया है।

9. तुलनात्मक रूप से सहकारी संस्था कारोबार अधिक मजबूत होता है। इसकी स्थिरता का स्रोत समावेशीपन में है जिसकी मूल संरचना : 'सदस्यों का और सदस्यों के लिए' वाली अवधारणा में निहित है। यह संरचना सुनिश्चित करती है कि सहकारी संस्थाएं अल्पकालिक लाभ के लिए संचालित होने वाले उद्यम मात्र नहीं है बल्कि यह दीर्घकालिक मजबूत और समावेशी संवृद्धि का एक कारोबारी मॉडल है।

10. वित्तीय सहकारी संस्थाएं मूल बैंकिंग कार्य करती हैं और ये निवेश बैंकिंग या व्यापार बैंकिंग में शामिल नहीं होती; ये वित्त पोषण के लिए बड़े या थोक बिक्री बाजार पर निर्भर नहीं होती। ये दीर्घकालिक निवेश की रणनीति पर चलते हैं और ऋण देने के संबंध में ऐसे संपार्श्विक जो तेजी से अपने मूल्य खो सकते हैं, पर निर्भर न होकर उधारकर्ता के बारे में उनके पास उपलब्ध जानकारी पर अधिक भरोसा करते हैं। ये वित्तीय क्षेत्र में विविधता लाते हैं। इसीलिए सहकारिता का सिद्धांत किसी भी मूल्य आधारित कारोबारी मॉडल का सबसे अच्छा उदाहरण है। जैसा कि संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव बान की-मून ने कहा कि, *'सहकारिता अंतरराष्ट्रीय समुदाय को इस बात का स्मरण कराती है कि इसके जरिए आर्थिक सक्षमता और सामाजिक उत्तरदायित्व को पूरा किया जा सकता है।'* वैश्विक वित्तीय संकट से हुए अनुभव केचलते वित्तीय स्थिरता को बनाए रखने हेतु सहकारी संस्थाओं के बारे में गंभीरता से विचार किया जा रहा है।

क्या सहकारिता में गिरावट आ रही है?

11. सहकारी संस्थाओं के औचित्य के पक्ष में उपर्युक्त चर्चा के बावजूद एक रुढवादी विचार यह है कि सहकारी संस्थाओं का पतन हो रहा है। जबकि, प्रमाण इसके बिल्कुल विपरीत हैं। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन[1] द्वारा किए गए हाल के अध्ययन में पला चलता है कि सहकारी कारोबारी मॉडल उद्यम का दीर्घाकालिक रूप है जो संकट के समय आने वाली चुनौतियों से लड़ने में सक्षम है। अध्ययन में इस प्रश्न को भी शामिल किया गया है कि क्या केवल सहकारी बैंक ही आर्थिक संकट के निपटने में सफल रहे हैं? क्या ये ऐसा कारोबार मॉडल है जिसे जब आवश्यकता होती है तो लोग अपना लेते हैं और जब संकट समाप्त हो जाता है तो लोग फिर से प्रबल निवेशक-स्वामित्त्व वाले मॉडल को अपना लेते हैं। अध्ययन से पता चलता है कि इस कथन के संबंध में कोई स्पष्ट कोई प्रमाण नहीं है। वस्तुतः यह अच्छे समय के दौरान सहकारी संस्थाओं द्वारा बनायी गई ऐसी क्षमता है जो उन्हें मंदी से पार पाने में मदद करती है।

सहकारी संस्थाओं का विकास - वैश्विक अनुभव

12. वैश्विक रूप से सहकारिता आंदोलन में आर्थिक गतिविधि, स्रोत और नौकरियां सृजित करने वाले एक बिलियन से अधिक लोग शामिल हैं। सहकारी सदस्यता में लोगों की सबसे अधिक संख्या रखने वाले देश भारत, चीन और संयुक्त राज्य अमेरिका हैं। पर्याप्त मात्रा में सहकारी बैंक रखने वाले देश जर्मनी, फ्रांस, निदरलैंड और इटली हैं।

13. विश्व के चारो ओर से प्राप्त अनुभव से पता चलता है कि सहकारी संस्थाएं उन देशों में मजबूत रही हैं जहां उन्हें शुरूआत से ही संबंधित सरकार से प्रभावी नीतिगत समर्थन मिला है। बाद में वे देश-वार विकसित हुईं। इनकी सफलता में दो प्रमुख कारण रहे हैं, अर्थात - सरकारी नियंत्रण की स्थिति और सदस्य सहभागिता की संख्या। आज के प्रौद्योगिकी चलित वैश्वीकृत परिवेश में, यह भी महत्वपूर्ण है कि क्या और किस हद तक ये प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिए तैयार हैं।

सहकारी संस्थाओं का विकास - भारतीय अनुभव

14. भारत में सहकारी संस्थाओं का विकास बहुत ही प्रभावशाली रहा है और इसमें अनेक गतिविधियां अर्थात क्रेडिट और बैंकिंग,

[1] रिजिलीआन्स ऑफ द कोपरेटिव बिजनेस मॉडल इन टाइम्स ऑफ क्राइसिस, जॉनसन बिर्शल एण्ड लो हैम्मोंड केटिलसन, 2009।

उर्वरक, चीनी, दुग्ध, विपणन, उपभोक्ता वस्तुएं, हथकरघा, हस्तशिल्प, मत्स्य-पालन, आवास इत्यादि शामिल रही हैं। भारतीय सहकारिता आंदोलन, जिसमें लगभग 6 सौ हजार सहकारी संस्थाएं शामिल हैं, विश्व की सबसे बड़ी गतिविधि है जो लाखों गरीब लोगों को स्वरोजगार प्रदान कर रही है। इस संबंध में गुजरात सहकारी दुग्ध विपणन महासंघ (जीसीएमएमएफ) के स्वामित्व वाला 'अमूल' और स्वरोजगार महिला एसोसिएशन (एसईडब्ल्यूए) गुजरात जैसी अनेक संस्थाएं हैं। उपभोक्ता सहकारी संस्थाओं में वारणा बाजार, वारणानगर, कोल्हापुर अगुआ रहा है। इन अधिक सफल कहानियों के अलावा भारतीय सहकारी संस्थाओं की विभिन्न कहानियां हैं। इस संबंध में जहां एक ओर बहुत अधिक सफलता मिली है वहीं थोड़ी-बहुत निराशा भी मिली है।

राज्य नीति द्वारा प्रेरित सहकारी गतिविधियां

15. भारत में, सरकार की नीति और सहयोग ने सहकारी गतिविधियों के विकास में महती भूमिका अदा की है। ऐतिहासिक दृष्टि से, 1904 में सहकारी क्रेडिट सोसाइटी अधिनियम और बाद में 1912 में अधिक व्यापक सहकारी सोसाइटी अधिनियम पारित होने से सहकारी संस्थाओं के सक्रिय व्यवसाय और प्रोत्साहन से संबंधित सरकारी नीति की शुरुआत हुई। आगे सरकारी सहयोग को फेडरिक निकलसन द्वारा किए गए अध्ययन से प्रोत्साहन मिला, बाद में सहकारिताविधान से संबंधित इडवर्ड कानून समिति से प्रोत्साहन मिला। 1915 में, मैकलगान समिति ने दोहराया और कहा कि 'प्रत्येक गांव में एक सहकारिता होनी चाहिए और प्रत्येक गांव को सहकारिता में शामिल किया जाना चाहिए।'

16. बाद के दशकों में भारतीय रिज़र्व बैंक ने देश में सहकारी गतिविधियों के विकास में अहम भूमिका निभाई। भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम 1934 में रिज़र्व बैंक में कृषि ऋण विभाग (एसीडी) की स्थापना तथा सहकारी ऋण प्रणाली को पुनर्वित्त सुविधा प्रदान करने हेतु प्रावधान किया गया। सहकारी ऋण और बैंकिंग के इतिहास में 1954 में भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा किया गया अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण ऐतिहासिक घटना थी। भारत और अनेक अन्य विकासशील देशों के अनुभव के आधार पर समिति ने कहा कि 'ग्रामीण परिवेश में ऋण संगठन का सहकारी सोसाइटी को छोड़कर कोई अन्य तरीका उपयुक्त नहीं होगा'। समिति की सिफारिशों का पालन करते हुए प्रारंभ की गई ग्रामीण ऋण से संबंधित एकीकृत योजना के चलते देश में सहकारी गतिविधियों में तेज वृद्धि हुई।

17. स्वतंत्रता के बाद जैसे ही पंचवर्षीय योजना के जरिए योजना प्रक्रिया की शुरूआत हुई, 'सहकारी क्षेत्र को नियोजित विकास की योजना में शामिल करना' राष्ट्रीय नीति के मुख्य उद्देश्यों में से एक बन गया। योजना प्रक्रिया इस सिद्धांत से प्रेरित थी कि ' आर्थिक जीवन की शाखाओं और विशेष रूप से कृषि, लघु सिंचाई, लघु उद्योग, प्रसंस्करण, विपणन, संवितरण, ग्रामीण विद्युतीकरण, आवास, निर्माण और स्थानीय समुदाय के व्यक्तियों के लिए आवश्यक सुविधाओं के प्रावाधन के लिए उत्तरोतर सहयोग क्रमिक रूप से संगठन का मुख्य आधार बनना चाहिए। मध्यम और बड़े उद्योगों और परिवहन क्षेत्र में भी गतिविधियों को सहकारी आधार पर बढ़ाया जा सकता है।

18. वर्षों के दौरान सहकारी संस्थाओं का महत्त्व और भी बढ़ गया तथा यह कोराबार गतिविधियों से आगे निकलकर व्यापाक आधार के विकास के विचार तक पहुंच गया ताकि ये गरीब और वंचित लोगों की सामान्य आर्थिक अपेक्षाओं को पूरा कर सके। उक्त कथन के अनुसार सरकार के बढ़ते विश्वास ने सहकारी संस्थाओं के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

भू-धारिता की स्थिति ने भी सहकारिता को प्रेरित किया

19. सरकारी नीति के अतिरिक्त, भारत में बदलती भू-धारिता प्रणाली भी सहकारी संस्थाओं के विस्तार में सहायक रही।

20. 50 और 60 के दशक के दौरान संपूर्ण कृषि योग्य भूमि का चौथाई से अधिक हिस्सा बड़े किसानों के पास था। वर्ष 1995-96 तक इस स्थिति में पर्याप्त बदलाव हुआ, बड़े खेत छोटे और सीमांत खेतों में बदल गए जिनका हिस्सा परिचालन धारित की संख्या और परिचालन क्षेत्र दोनों में बढ़ गया। पिछली कृषि जनगणना (2005-06) के अनुसार 2 हेक्टेयर से कम भूमि रखने वाले छोटे और सीमांत किसान परिचालन धारिता की कुल संख्या का 83 प्रतिशत और परिचालित क्षेत्र का 41 प्रतिशत हैं। यह 'छोटे' किसानों का ऐसा वर्ग है - जो सामाजिक और आर्थिक रूप से हाशिए पर कार्य कर रहा है, जिसकी आय बहुत कम और बाजार संबंधी जानकारी सीमित है जिसे जलवायु परिवर्तन का खतरा है और अपनी कृषि गतिविधियों में काफी जोखिम उठा रहा है - यही वर्ग सहकारी संस्थाओं का प्रमुख सदस्यता आधार है। सहकारी संस्थाओं द्वारा वितरित ऋण का औसत आकार वाणिज्य बैंकों (2010) द्वारा वितरित ₹1,38,000/- की तुलना में

₹30,000/- है। इनके अंतर से सहकारी संस्थाओं और उनके ग्राहकों की प्रकृति के बारे में पता चलता है।

अभी भी उनकी हानि हो रही है - ग्रामीण सहकारिता की ऋण प्रणाली में समस्याएं

21. जैसा कि ऊपर उल्लेख है कि भारत में सहकारी गतिविधियों को सरकारी नीति और भू-धारिता प्रणाली दोनों का सहयोग मिला है। फिर भी, लगता है कि सहकारी संस्थाएं कारोबार की दृष्टि से पीछे रही हैं। भारत में ग्रामीण सहकारी संस्थाओं का बाजार हिस्सा 2001 के 7.2 प्रतिशत से लगातार कम होकर 2010 में 3.7 प्रतिशत रहा गया[2]। यदि आगे सहकारी संस्थाओं के हिस्से में और गिरावट आई तो वे ग्रामीण ऋण में मुख्य घटक होने की भूमिका खो सकती हैं। इससे एक महत्त्वपूर्ण नीतिगत प्रश्न उठता है। क्या सहकारी संस्थाओं के संचालन की प्रक्रिया पूरी तरह से टॉप-डाउन प्रॉसेस से प्रेरित हो सकती है? क्या सहकारी गतिविधियों के बढ़ाने के लिए बॉटम-अप सहयोग आवश्यक नहीं है?

सहकारी प्रणाली स्थिर क्यों नहीं है?

22. देश में सहकारी संस्थाओं के निराशाजनक निष्पादन करने के अनेक कारण हैं जिनके चलते उनकी व्यवहार्यता और सुदृढ़ता पर प्रश्न उठता है। मैं उनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर संक्षिप्त रूप से चर्चा करुंगा।

(i) अल्पावधि सहकारी ऋण संरचना (एसटीसीसीएस), जिसने एक समय छोटे और सीमांत किसानों का सहयोग करके कृषि की संवृद्धि में अहम भूमिका निभाई थी, पतन की ओर हैं। 1990 के दशक के पूर्वार्धि तक, सहकारी संस्थाएं देश में लगभग 62 प्रतिशत कृषि-ऋण प्रदान करते थे किन्तु वर्षों के दौरान उनके हिस्से में कमी आई है और 2009-10 तक घटकर यह 16 प्रतिशत रह गया है।

(ii) कृषि और ग्रामीण विकास से संबंधित गतिविधियों के ऋण प्रवाह में कमी आने के अनेक कारण हैं। सरकारी हस्तक्षेप और मुख्यतः प्रजातांत्रिक और सदस्य शासित इन सहकारी संस्थाओं के राजनीतीकरण ने प्रबंधकीय और वित्तीय स्तर पर इनके अभिशासन को नुकसान पहुंचाया है। अभिशासन में हुए नुकसान के उदाहरणों में चुनाव न होना, अक्सर बोर्ड का अधिक्रमण और लेखा-परीक्षा में देरी और प्रशासनिक और वित्तीय प्रबंधन में सरकारों की दखलंदाजी आदि शामिल हैं।

(iii) सहकारी संस्थाओं के पुनरुत्थान के लिए भारत सरकार द्वारा नियुक्त कार्य दल ने नोट किया कि में बहुत अधिक नुकसान हुआ है। सरकारो ने अक्सर प्रभावशाली शेयरधारकों, प्रबंधक, विनियामक, समवर्ती पर्यवेक्षक और लेखा-प्रबंधकों की भूमिका को आपस में मिला दिया जिसके कारण बहुत अधिक हित-संघर्ष पैदा हो गया। सहकारी संस्थाओं को प्रशासनिक दायरे में कार्य करने की भी जरूरत थी और पंचायत, जनपद और राज्यों के विभाजित होने के कारण इन्हें अक्सर छोटी-छोटी संस्थाओं में विभाजित किया गया।

(iv) कमजोर वित्त, बढ़ती अनर्जक आस्तियां और कमजोर संसाधन आधार ऐसे कारक हैं जिन्होंने सहाकरी संस्थाओं के कार्यनिष्पादन को इस निचले स्तर तक पहुंचाने में मदद की है। ये बुनियादी संस्थाएं अधिकांशतः उच्चतर एजेन्सियों अर्थात केन्द्रीय सहकारी बैंकों पर निर्भर करती हैं जिन्हें अगली उच्चतर एजेन्सियों से ऋण लेना पड़ता है, इस प्रकार बाहर से संसाधन जुटाने के लिए सहकारी ऋण संरचना के सभी स्तरों पर निर्भरता की श्रृंखला बन गई है।

(v) सहकारी संस्थाओं का व्यवहार उधारकर्ताओं के अनुकूल होता है और ये जमाकर्ताओं के साथ समान व्यवहार नहीं करतीं। केवल उधारकर्ता ही सहकारी संस्थाओं के सदस्य हो सकते हैं। जमाकर्ता या तो गैर-सदस्य या मताधिकार के बिना 'नाममात्र' के सदस्य होते हैं। पहला, यह पारस्परिकता की अवधारणा के विपरीत है (मितव्यय और ऋण एक साथ चलते हैं)। दूसरा, यह जमाकताओं के हित में नहीं है कि उनका पैसा सहकारी संस्थाओं द्वारा उपयोग किया जाता है किन्तु उनका प्रबंधन में कोई अधिकार नहीं है।

(vi) कई अन्य गतिविधियां हैं जिन्होंने सहकारी संस्थाओं के विकास में बाधा डाली है। सहकारी संस्थाएं वित्तीय क्षेत्र में तेजी से हुए बदलाव के अनुरूप स्वयं को नहीं बदल

[2] गिरावट की कहानी शहरी सहकारी बैंक के समान ही है जिनका हिस्सा 2001 के 6.3 प्रतिशत से कम होकर 2010 में 3.5 प्रतिशत रह गया।

सकीं। नए उत्पाद और सेवाएं, प्रौद्योगिकी का उपयोग और उन्नत प्रबंध प्रणालियों को अपनाने से कुशलता में सुधार होकर वित्तीय क्षेत्र में मार्जिन कम हो गई है। जहां अन्य संस्थाओं ने इन बदलावों के अनुसार स्वयं को ढाल लिया, वहीं सहकारी संस्थाएं इस मामले में पीछे रह गईं। वे इस कारण से घटते कारोबार, खराब अभिशासन और कमजोर मानव संसाधन के दुष्चक्र में फंस गईं।

23. ग्रामीण ऋण में सहकारी संस्थाओं का कम होता हिस्सा चिंता का विषय है, विशेष रूप से क्योंकि वे ही लघु और सीमांत किसानों के लिए सहयोग के स्रोत होती हैं। दीर्घावधि सहकारी ऋण संरचना की स्थिति भी चिंता का कारण है क्योंकि इससे पूंजी निर्माण प्रभावित होता है जिससे अंततः उत्पादकता प्रभावित होती है।

अभी भी उनकी पहुंच ही उनकी शक्ति है और उन्हें इसका लाभ उठाना चाहिए

24. क्या वे सभी कमजोरियां जिनका हमने ऊपर उल्लेख किया है, का अभिप्राय यह है कि सहकारी संस्थाओं में कोई गुण नहीं है और क्या वे आज के परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिक नहीं हैं? इन प्रश्नों का स्पष्ट जवाब है - नहीं। 100,000 सक्रिय आउटलेट के साथ अल्पावधि सहकारी ऋण संरचना का बड़ा नेटवर्क ही इनकी शक्ति है। मुझे विश्वास है कि अन्य किसी संस्थान में संसाधन जुटाने और ऋण का प्रबंध करने की इतनी अधिक क्षमता नहीं है। तब फिर हम सहकारी संस्थाओं की क्षमता का यह लाभ विशेष रूप से देश में वित्तीय समावेशन को बढ़ाने के लिए कैसे उठाए?

25. तीन स्तरीय एसटीसीसीएस में एक लाख से अधिक प्राथमिक कृषि ऋण समितियां (पीएसीएस), 13000 हजार शाखाओं के साथ लगभग चार सौ जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक और लगभग 1000 शाखाओं के साथ 31 राज्य सहकारी बैंक शामिल हैं।

26. संख्या के अलावा इन आउटलेटों के स्थान महत्त्वपूर्ण हैं। पीएसीएस की अधिकांश शाखाएं पहाड़ी क्षेत्रों, मरुभूमि और अन्य क्षेत्रों में स्थित है जो कि वाणिज्य बैंकों और आरआरबी की ग्रामीण शाखाओं से बहुत अधिक हैं, ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित होने के कारण एसटीसीसीएस इकाइयां अपने मौजूदा और संभाव्य ग्राहकों से भलीभांति परिचित होती हैं। गहरी पैठ और बेहतर स्थानीय जानकारी के साथ सहकारी संस्थाओं का बड़ा ढांचा वित्तीय समावेशन को बढ़ाने के लिए एक आदर्श प्लेटफार्म है। तार्किक बात यह है कि वित्तीय समावेशन की अवधारणा के आने के बहुत पहले से ही सहकारी बैंक वित्तीय समावेशन का कार्य करते रहे हैं।

27. उपर्युक्त लाभ के बावजूद, पीएसीएस को कारोबार संपर्की के तौर पर औपचारिक रूप चिह्नित नहीं किया गया और न ही उन्हें वाणिज्य बैंकों और आरआरबी के समकक्ष वित्तीय समावेशन संबंधी गतिविधियों के साथ औपचारिक रूप से जोड़ा गया। ग्रामीण जनसंख्या का एक बड़ा भाग अपने बैंक खाते डीसीसीबी और एससीबी शाखाओं में रखता है, इस हकीकत के बावजूद डीसीसीबी को कोई भी गांव आबंटित नहीं किया गया। इसका एक कारण इन बैंकों में *प्रौद्योगिकी प्रेरित* वित्तीय समावेशन कार्यक्रम में सहभागी होने हेतु पर्याप्त प्रौद्योगिकी सुविधा का न होना था। इस समस्या का हल निकालने के लिए, संस्थागत प्रतिबद्धता के रूप में नाबार्ड ने चरणबद्ध तरीके से एक साझा प्रौद्योगिकी प्लेटफार्म बनाने का एक महत्वाकांक्षी प्रयास किया है। अब उन्हें भी एफआईपी में शामिल होने के लिए तैयार रहना चाहिए बशर्ते उनकी वित्तीय स्थिति में भी सुधार हो।

सहकारी संस्थाओं के ढांचे को सुधारना - क्या करने की जरुरत है?

28. यदि सदस्यों के स्वामित्व और उनके द्वारा परिचालित प्रतिष्ठान के रूप में सहकारी बैंकों के अंतर्निहित लाभ का उपयोग लेना है और उन्हें वित्तीय समावेशन में महत्त्वपूर्ण और निरंतर भूमिका अदा करने योग्य बनाना है तो सबसे पहले उपर्युक्त अड़चनों और बाधाओं को हटाना होगा। इस संबंध में मैं संक्षिप्त रूप से चर्चा करना चाहूंगा।

अभिशासन /प्रबंधन की व्यावसायिकता में सुधार

29. सहकारी बैंक के अभिशासन में व्यावसायिकता का अभाव है। अभिशासन संरचना और इन संस्थानों की कार्यप्रणाली दोनों को व्यावसायिकृत करने की जरूरत है। पहला, गवर्नेंस को प्रबंधन से अलग रखना होगा। बोर्ड को अपनी भूमिका सीमित करनी चाहिए और सीईओ व अन्य वरिष्ठ प्रबंधन को इन प्रतिष्ठानों के दैनंदिन परिचालनों को सभांलने की अनुमति देनी चाहिए। बोर्ड को बोर्ड की बैठक में इनकी समीक्षा करके और इनसे प्रगति रिपोर्ट और सूचना मांगकर इन पर निगरानी रखनी चाहिए। इन संस्थानों में प्रबंधकीय स्तर के कार्मिकों का चयन 'सही और उपयुक्त' मानदंड़ के आधार पर करने की भी जरूरत है।

खराब वित्तीय स्थिति पर ध्यान देना

30. लाइसेंस रहित सहकारी बैंकों की कमजोर होती वित्तीय स्थिति चिंता का विषय है। 31 मार्च 2009 को देश में मौजूद 402 ग्रामीण सहकारी बैंकों में से 313 बैंकों के पास लाइसेंस नहीं था। भारत के वितीय क्षेत्र से संबंधित मूल्यांकन समिति (सीएफएसए) की सिफारिश के अनुसार रिज़र्व बैंक ने निर्णय किया है कि लाइसेंस रहित सहकारी बैंकों को 31 मार्च 2012 के बाद देश में कार्य करने की अनुमति नहीं होगी। इसके बाद, भारतीय रिज़र्व बैंक और नाबार्ड ने सहकारी बैंकों के साथ मिलकर कार्य किया और उनमें से 272 सहकारी बैंकों को लाइसेंस दिया गया है, कई बैंकों को लाइसेंस मानदंड़ों में रियायत देकर लाइसेंस दिए गए।

31. 1 अप्रैल 2012 को 41 सहकारी बैंक शेष रह गए हैं जो लाइसेंस संबंधी रियायती मानदंडों को भी पूरा नहीं कर सके। सहकारी प्रणाली की अखंडता बनाए रखने और जनहित की रक्षा के लिए रिज़र्व बैंक ने इन 41 बैंकों को नई जमाराशियां स्वीकार न करने के निर्देश दिए हैं। यहां यह उल्लेख करना जरूरी है कि इस दिशा-निर्देश के अनुसार मौजूदा खाता धारकों के साथ बैंक द्वारा सामान्य लेनदेन करने पर कोई पाबंदी नहीं है। इन बैंकों को नई जमाराशियां स्वीकार न करने संबंधी दिशा-निर्देश जारी करते हुए रिज़र्व बैंक ने जमाकर्ताओं के हित और बड़े पैमाने पर जनहित की सुरक्षा को ध्यान में रखा है।

32. नीचले स्तर की बहुत अधिक संख्या में सहकारी समितियों अर्थात 18553 पीएसीएस (कुल का लगभग 20 प्रतिशत) को खराब वसूली करने के कारण वैद्यनाथन समिति-I (वीसी I)[3] द्वारा सिफारिश किए गए पुनरूज्जीवन पैकेज के तहत शामिल नहीं किया गया है। राज्यों ने इन पीएसीएस की स्थिति सुधारने के लिए कार्य-योजना तैयार करनी चाहिए। वीसी I में शामिल की गई शेष पात्र पीएसीएस को पुनःपूंजीकरण के लिए अपने खुद के हिस्से से शुरुआत करके पूर्ण पुनःपूंजीकरण प्राप्त करने के लिए कार्य करना है।

33. शहरी सहकारी बैंकों की स्थिति अपेक्षाकृत बेहतर है क्योंकि पिछले कई वर्षों के दौरान सुदृढ़ीकरण और समाधान की प्रक्रिया के तहत वित्तीय रूप से कमजोर अनेक बैंकों का परिसमापन कर दिया गया है। अब सिर्फ एक शहरी सहकारी बैंक लाइसेंस के लिए शेष रह गया है।

[3] देश में ग्रामीण सहकारी ऋण संस्थानों को मजबूत करने की सिफारिशें करने के लिए 2004 में गठित सिमित।

स्थिति को बराबर करने के लिए प्रौद्योगिकी को अपनाना

34. प्रौद्योगिकी आधुनिक बैंकिंग कुशलता का निर्धारण करने के लिए प्रौद्योगिकी एक अहम कारक बन गया है। सहकारी बैंक प्रौद्योगिकी उन्नयन के मामले में वाणिज्य बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों से बहुत अधिक पीछे हैं। सहकारी बैंक को इस बात का अहसास जरूर करना चाहिए कि आज के संसार में बैंकिंग प्रौद्योगिकी से अलग नहीं रह सकती, इसका मुख्य कारण वाणिज्य बैंकों से प्रतिस्पर्धा नहीं है बल्कि यह आधुनिक ग्राहक - ग्रामीण या शहरी की मांग है। इसलिए सहकारी बैंकों को तेजी से प्रौद्योगिकी को अपनाना चाहिए।

शेयर पूंजी और जमाराशि की सुरक्षा की स्थिति में सुधार करना

35. जैसा कि मैंने पहले भी उल्लेख किया है कि सहकारी बैंकों के भविष्य के लिए महत्वपूर्ण मुद्दा यह सुनिश्चित करना है कि सदस्यों की सहकारी बैंकों में पर्याप्त वित्तीय धारिता है। इसके लिए सदस्यता शुल्क या शेयर के अंकित मूल्य में वृद्धि सहित अनेक उपाय करने होंगे।

36. आज सदस्य अपनी खुद की पीएसीएस में अपनी जमाराशियों की सुरक्षा की चिंता की वजह से जमाराशियों को रखने में हिचकते हैं। पीएसीएस की जमाराशियों को डीआईसीजीसी के तहत कवर नहीं किया जाता और राज्यों की निक्षेप बीमा योजनाएं मात्र कागज पर बनी हुई हैं। सहकारी संस्थाओं पर ग्राहकों का विश्वास पुनः बनाने की आवश्यकता है ताकि छोटे जमाकर्ता असुंतष्ट होकर इसे न छोड़े और सहकारी बैंकों से जुड़े रहें।

सदस्यों की सहभागिता बढ़ाना

37. छोटे और सीमांत किसानों की संख्या में बढ़ोतरी के चलते औपचारिक काश्तकारी में बढ़ोतरी होने से वित्त पोषण, कृषि संबंधी चलन, इनपुट आपूर्ति, उपकरण, विपणन और प्रसंस्करण के इस्तेमाल के लिए एकीकृत मॉडल तुरंत विकसित करने की जरूरत है। जहां किसानों के संयुक्त देयता समूह मध्यावर्ती उपाय के रूप में कार्य कर सकते हैं, वहीं इसका दीर्घावधि समाधान यह है कि इसमें अधिक से अधिक सदस्यों को शामिल किया जाए।

38. पीएसीएस के कार्यों में सदस्यों की सहभागिता बढ़ाने के लिए जरूरी है कि सदस्य और पीएसीएस के बीच संपर्क स्थानों की संख्या बढ़ाई जाए। सबसे प्रभावी संपर्क दोनों के बीच लाभदायक कारोबार

के जरिए हो सकता है और इसलिए पीएसीएस द्वारा प्रदान किए जा रहे उत्पादों की संख्या में काफी विस्तार करने की आवश्यकता है।

39. हमें पीएसीएस को बहु-क्रियाशील प्रतिष्ठानों में बदलने की जरूरत है ताकि सभी सदस्य जब भी उत्पाद और सेवाओं के बारे में सोचे, तो वे स्वतः अपने पीएसीएस के बारे में सोचें। अधिप्राप्ति, भंडार सुविधा प्रदान करना, भंडारण और बीज और पौधे सहित अन्य सुविधाएं, खेती से संबंधित यंत्रों को लीज़ पर देना, मौसम, बाजार मूल्य और परामर्शी सेवाओं से संबंधित सूचनाएं और भूमि अभिलेख प्रदान करने वाला साझा सेवा केन्द्र बनाना आदि के कार्य करने वाली पीएसीएस के उदाहरण कई राज्यों में हैं। पीएसीएस को अन्य वित्तीय उत्पाद, विशेष रूप से बीमा सुविधा, प्रदान करने की और अपनी शुल्क आधारित आय को बढ़ाने की आवश्यकता है।

आगे आने वाले प्रश्न

40. सुधार के बिंदुओं की चर्चा के बाद अब मैं कुछ प्रश्नों को आपके समक्ष रखता हूं और मुझे आशा है कि ये प्रश्न अगले दो दिनों के दौरान इस सम्मेलन में चर्चा का हिस्सा बनेंगे।

प्रश्न 1: क्या सहकारी संस्थाएं वित्तीय समावेशन के लिए पर्याप्त कार्य कर रही हैं?

41. सहकारी ऋण संरचना का मूल सिद्धांत और सारांश वित्तीय समावेशन को सुनिश्चित करना है। हम सभी जानते हैं कि वित्तीय वंचन न केवल देश के सुदूर भागों में है बल्कि यह शहरी केन्द्रों में भी है। शहरी वित्तीय समावेशन का महत्त्व इस बात में निहित है कि शहरी गरीबों, विशेष रूप से प्रवासी श्रमिकों, का वित्तीय समावेशन ग्रामीण वित्तीय समावेशन के लिए विप्रेषण के जरिए एक अगली कड़ी प्रदान करता है। यह प्रश्न शहरी परिवेश में विशेष रूप से सहकारी बैंकों को निर्देशित करता है। क्या वे वित्तीय समावेशन के लिए पर्याप्त कार्य कर रहे हैं? क्या इन्होंने झोपड़ियों में रहने वाले लोगों और प्रवासी श्रमिकों के पर्याप्त खाते खोले हैं?

प्रश्न 2: क्या सहकारी संस्थाएं मुद्रास्फीतिकारक दबाव को कम करने हेतु आपूर्ति श्रृंखला में सुधार कर सकती हैं?

42. विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में जहां आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन आमतौर पर कमजोर होता है, अक्सर बिचौलियों से काल्पनिक मुद्रास्फीतिकारक दबाव बनता है। क्या सहकारी संस्थाओं के जरिए दीर्घकालिक कृषि-मूल्य श्रृंखला विकसित करने से संबंधित अधिक सक्रिय दृष्टिकोण दीर्घकालिक मुद्रास्फीतिकारक दबाव को कम करने में मदद कर सकता है?

प्रश्न 3: सहकारी संस्थाओं के प्रजातांत्रिक चरित्र को कैसे मजबूत किया जा सकता है?

43. प्रजातंत्र और खुली सदस्यता सहयोग के मुख्य सिद्धांत हैं। तथापि, हाल ही में कृषि बैंकिंग महाविद्यालय द्वारा शहरी सहकारी बैंकों पर किए गए अध्ययन से इन संस्थानों के प्रजातांत्रिक ढांचे की निराशाजनक तस्वीर सामने आई है। आम सभा में सदस्यों की कम उपस्थिति और चुनाव प्रक्रिया में उनकी कम सहभागिता ने प्रजातांत्रिक अनुपात के बारे में प्रश्न खड़े किए हैं। क्या गवर्निंग बाडी और संघ सहकारी बैंकों के अभिशासन में सदस्यों की सहभागिता बढ़ाने के लिए कार्य कर रहे हैं? क्या सहकारी संस्थाओं के प्रजातांत्रिक मूल्यों में सुधार करने हेतु चुनाव आयोग जैसी कोई अलग संस्था होनी चाहिए?

44. सबसे महत्त्वपूर्ण मुद्दा यह है कि बहुत से ऐसे उदाहरण हैं जहां सहकारी बैंक नेता केन्द्रित हो गए हैं। वे अच्छे नेता के नेतृत्व में अच्छा कार्य करते हैं किन्तु जैसा ही वे इन्हें छोड़ते हैं, संस्था कमजोर हो जाती है। आरंभिक स्तर पर संस्थागत नेतृत्व के लिए क्या *'मंत्र'* है?

प्रश्न 4: क्या सहकारी बैंकों को मूल बैंकिंग से परे बैंकिंग करना चाहिए?

45. यह हमेशा चलने वाली बहस है कि क्या सहकारी बैंकों को सिर्फ बिल्कुल सादे उत्पादों तक ही सीमित रहना चाहिए या फिर वे वाणिज्य बैंकों की तरह आकर्षक और संयुक्त उत्पाद भी प्रदान करें। इस पर निर्णय करने के लिए हमें संकट से प्राप्त अनुभव से मार्ग-दर्शन लेना चाहिए। संकट के बाद बैंक के विरुद्ध मुख्य आलोचना यह रही है कि वे अधिकांशतः 'कैसिनों' का रूप लेते जा रहे हैं। तब क्या सहकारी बैंकों का इसी में हित है कि वे स्वयं को 'यूटिलिटी' बैंक तक सीमित रखे?

प्रश्न 5: क्या सहकारी बैंकों की सामाजिक लेखा-परीक्षा होनी चाहिए?

46. 'सहकारी संस्था' सामाजिक और 'बैंकिंग' एक वाणिज्यिक और कारोबारी संकल्पना है। सहकारी बैंकिंग की इन दो परस्पर-विरोधी बातों को ध्यान में रखते हुए कुछ लोगों का मत है कि सहकारी बैंकों का मूल्यांकन वित्तीय मानदंडों के साथ गैर वित्तीय मानदंडों के अनुसार भी करना चाहिए। क्या इसमें सामाजिक लेखा-परीक्षा की

कोई प्रणाली हो सकती है जो संगठन के सामाजिक, परिवेशी और सामुदायिक लक्ष्यों के संदर्भ में कार्यनिष्पादन का मूल्यांकन करे? यदि हां, तो इस सामाजिक लेखा-परीक्षा कार्य के लिए समुचित संस्थागत प्रणाली क्या होनी चाहिए?

समापन

47. अभी तक मैंने जो कुछ भी कहा है उसका सारांश इस प्रकार है। मैंने कहा था कि रूढ़िवादी विचार होने के बावजूद सहकारी बैंक के मूल्य आज भी प्रासंगिक हैं। वास्तव में, वित्तीय क्षेत्र का लालच और ज्यादती के कारण संकट, जिसका परिणाम 2008/09 का वैश्विक संकट है, के बाद हमें सदस्य प्रेरित, सहकारी बैंक जैसी मूल संस्थाओं की उपयोगिता के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त हुई है। उसके बाद, मैंने सहकारी बैंकों के भारतीय अनुभव के बारे में बात की और चर्चा की कि क्या भारत में सहकारी बैंकों की संरचना की मुख्य कमजोरी यह है कि वे बोर्ड आधारित बॉटम-अप-प्रणाली को अपनाने के बजाए टॉप डाउन स्टेट पॉलिसी से मिले सहयोग के आधार पर बढ़ रहे हैं।

48. उसके बाद, मैंने भारतीय सहकारी क्षेत्र की अनेक खामियों की चर्चा की किन्तु मैंने यह भी कहा कि इन खामियों के बावजूद सहकारी बैंकों ने वित्तीय समावेशन को आगे बढ़ाने में अहम भूमिका अदा की है। तत्पश्चात मैंने सहकारी क्षेत्र के उन चिंताजनक मुद्दों को सूचीबद्ध किया जिनका हमें इसे पुनर्जीवित करने के लिए समाधान करना जरूरी है। अंत में, मैंने सहकारी क्षेत्र से संबंधित भावी पांच प्रश्न किए हैं जो इस सम्मेलन में चर्चा के बिन्दु हो सकते हैं।

49. अब समापन के समय मैं महसूस कर रहा हूँ कि मुझे जितना होना चाहिए उससे कहीं ज्यादा निंदक रहा हूँ। शायद, मुझे इसे सही करना चाहिए। सहकारी मूल्य हटकर नहीं हैं। ये गरीब लोगों और वंचित लोगों को हक दिलाने के लिए एक शक्तिशाली उपाय रही है और आगे भी हो सकती है। वास्तव में, सहकारी बैंकों की सफलता के विश्व और भारत में अनेक उदाहरण मौजूद हैं। फिर भी, वित्तीय और अभिशासन दोनों से संबंधित अनेक कारणों से सहकारी बैंकों की विश्वसनीयता कम हुई है, विशेष रूप से क्योंकि सहकारी बैंकों में अनेक खामियां आई हैं और उनमें से कई दीर्घकालिक हैं। फिर भी इन खामियों का समाधान संभव है। हम इन खामियों को दूर करके सहकारी बैंकों के ढांचे को फिर से स्वस्थ और प्रासंगिक बना सकते हैं। वास्तव में, यह कोई पसन्द का मामला नहीं है किन्तु यदि हमें समावेशी वृद्धि हेतु अपने सामूहिक लक्ष्य को प्राप्त करना है तो यह हमारे लिए जरूरी है। मुझे आशा है कि यह सम्मेलन इस संदर्भ में आगे बढ़ने में हमारी सहायता करेगा।

इस सम्मेलन की सफलता के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।